“मायाधारी अति अना बोला”

मायाधारी अति अंना बोला ।।
सबदु न सुणई बहु रोल घचोला ।। **(पृ. ३१३)**

इस पंक्ति में केंद्रीय तथ्य है **‘माया’** जिसके विषय में विस्तारपूर्वक विचार करने की आवश्यकता है ।

प्रचलित विचारधाारा के अनुसार केवल रूपए, नकद, सोना, चाँदी आदि को ही **‘माया’** समझा जाता है । यदि ध्यानपूर्वक विचार किया जाए तो स्पष्ट होगा कि हमारा यह विचार अधूरा तथा एक पक्षीय है ।

माया के कई रंग रूप तथा पहलू हैं -

१. **जड़ माया** : ‘जड़ माया’ में वह सभी वस्तुएं आती हैं जिनमें **‘चेतना’ (consciousness)** का आभाव हो जैसे धरती, मकान, धातू, सोना, चांदी इत्यादि ।

ताजी तुरकी सुइना रुपा कपड़ केरे भारा ।।
किस ही नालि न चले नानक झड़ि झडि पए गवारा ।।.......
दे दे नीव दिवाल उसारी भस मंदर की ढेरी ।।
संचे संचि न देई किस ही अंधु जाणे सभी मेरी ।। (पृ. १५५)

मुकति माल कनिक लाल हीरा **मन रंजन की माइआ ।।** (पृ. ७००)

राजु मालु झूठी सभ माइआ ।। (पृ. ११५५)

२. **चेतन माया :** इसके अन्तर्गत वह सभी जीव आते हैं जिनमें **चेतना या बुद्धि होती है ।** जैसे पशु, पक्षी, मनुष्य आदि । इनकी चेतना भिन्न-भिन्न स्तर की होती है । यह **चेतना प्राकृतिक** नियम के अनुसार सब जीवों में **‘सीमित’** मात्रा में होती है। परन्तु मनुष्य में यह असीमित होती है ।

मनुष्य में यह अत्यंत मात्रा तक विकसित होने की शक्ति रखती है । इसी 'सूक्ष्म चेतना' तथा तीक्ष्ण बुद्धि के कारण मनुष्य मोह-ममता में गलतान रहता है।

पुति कुटंबि ग्रिहि मोहिआ माइ ।।
मनमुखि अंधा आवै जाइ ।। (पृ. १६१)

कंचन नारी माहि जीऊ लुभतु है मोहु मीठा लाइआ ।।
घर मंदर घोड़े खुसी मनु अनरसि लाइआ ।। (पृ. १६७)

पूत मीत माइआ ममता सिउ इह बिधि आपु बंधावै ।। (पृ. २१९)

मात पिता भाई सुत बनिता ता कै रसि लपटाना ।। (पृ. ६८५)

माया सुत दारा जगत पिआरा
चोग चुगै नित फासै ।। (पृ. १११०)

३. **अचेतन माया :** कई **बार अचानक** ही ऐसी दशा उत्पन्न हो जाती है जिसमें **हमारे चेतन विचारों या कर्मों का** कोई हाथ नहीं होता यह हमारे पिछले **'संस्कारों' का परिणाम होता है** जो हमें अवश्य ही भोगना पड़ता है ।

आधि बिआपि उपाधि रस कबहु न तूटै ताप ।। (पृ. २९७)

कभी कभी समाज (Society) के गलत करमों का फल भी हमें भोगना पड़ता है । इसके अतिरिक्त प्राकृतिक **कोप** भी भोगने पड़ते हैं ।

झड़ झड़ ओहाड़ लहरी बहनि लखेसरी ।। (पृ. १४१०)

धरती ऊपरि कोटगड़ भुइचाल कंमंदे ।।
झखड़ि आए तरुवरां सरबत हलंदे ।।
डबि लगै उजाडि विच सभ घाह जलंदे ।
हड़ आए किनि थमिअनि दरिआउ वहंदे ।। (वा. भा. गु. ३५/२१)

४. **विचार रूपी माया :** ईश्वर की कृपा के द्वारा दी गई तीक्ष्ण बुद्धि का प्रयोग करते हुए मनुष्य कई प्रकार के **'ख्याल'** सोचता, विचार करता तथा योजनाएँ बनाता रहता है तथा उनकी पूर्त्ति के लिए यत्न करता रहता है । वास्तव में मनुष्य अपने विचारों द्वारा ही अपने लिए **अच्छी या बुरी दुनिया की रचना करता रहता** है **तथ स्वयं बनाई 'ख्याली दुनिया'** में विचरण करते हुए दुख-सुख भोगता तथा भविष्य के लिए **अपना 'भाग्य' या किस्मत बनाता रहता है ।**

Man is incessantly weaving his own good or bad world around himself by his own thoughts like a silk work and suffers the consequences of his own thoughts and deeds,. Thereby creating his own fate and destiny.

उरझि रहिओ बिखिआ कै संगा ।।
मनहि बिआपत अनिक तरंगा ।। (पृ. ७५८)

माया ममता पवहि खिआली ।।
जमपुरि फासहिगा जम जाली ।। (पृ. ९९३)

५. **वासना रूपी माया :** पाँच तत्व काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि हमारे मन की वासनाएं हैं तथा हम अपने मन के विचारों को इनके **रंग में रंग कर 'वासनामयी दुनिया'** की रचना करते हैं तथा उसका परिणाम भोगते हैं । यह **'वासनामयी दुनिया'** बड़ी सूक्ष्म तथा दामनिक है, इसमें सारी दुनिया गलतान होकर दुखी हो रही है ।

माया जालु पसारिआ भीतरि चोग बणाइ ।।
त्रिसना पंखी फासिआ निकसु ना पाए माइ ।। (पृ. ५०)

कामु क्रोधु माया महि चीतु ।।
झूठ विकारि जागै हितु चीतु ।।
पूंजी पाप लोभ की कीतु ।। (पृ. १५३)

दूजी माया जगत चितु वासु ।।
काम क्रोध अहंकार बिनासु ।। (पृ. २२३)

साकत मूड़ माया के बधिक
विचि माया फिरहि फिरंदे ।।
त्रिसना जलत किरत के बाधे
जिउ तेली बलद भवंदे ।। (पृ. ८००)

६. **अहम-रूपी माया :** यह अत्यंग सूक्ष्म, स्थूल, बहुरंगी और विशाल है तथा त्रै-गुणों में **ताने-बाने की भाँति परिपूर्ण है ।**

'अहम्' संसार का 'बीज' है, यह अहम ही त्रैगुणों में द्वैत का भाव (दूसरा होने का भाव) का मूल कारण है ।

हमारी ज्योति स्वरूप 'आत्मा' के चारों ओर **अहम् का 'ख्याली बुलबुला'** बना हुआ है जिस कारण हमारा **अहम्ग्रस्त मन** अपनी ज्योति स्वरूप आत्मा को **भूल** कर अथवा अनजान बन कर, बेपरवाह होकर कर्म करता तथा उनके परिणाम भोगता है ।

माया किसनो आखीऐ किआ माया करम कमाए ।।
दुखि सुखि एहु जीउ बधु है हउमै करम कमाए ।। (पृ. ६७)

दूजै भाए न सेविआ जाए ।।
हउमै माया महा बिखु खाइ ।। (पृ. १६१)

हउमै माया सभी बिखु है नित जगि तोटा संसारि ।। (पृ. ३००)

मन तूं गारबि अटिआ गारबि लदिआ जाहि ।।
माया मोहणी मोहिआ फिर फिरि जूनी भवाहि ।। (पृ. ४४१)

हउ विचि आइआ हउ विचि गइआ ।।
हउ विचि जंमिआ हउ हउ विचि मुआ ।।
हउ विचि दिता हउ विचि लइआ ।।
हउ विचि खटिआ हउ विचि गइआ ।।
हउ विचि सचिआरु कुडिआरु ।।
हउ विचि पाप पुंन वीचारु ।।
हउ विचि नरकि सुरगि अवतार ।।
हउ विचि हसै हउ विचि रोवै ।।
हउ विचि भरीए हउ विचि धोवै ।।
हउ विचि जाती जिनसी खोवै ।।
हउ विचि मूरखु हउ विचि सिआणा ।।
मोख मुकति की सार न जाणा ।।
हउ विचि माया हउ विचि छाया ।।
हउमै करि करि जंत उपाइआ ।। (पृ. ४६६)

माया मोह सभ कूड़ है कूड़ो होइ गइआ ।।
हउमै झगड़ा पाइओनु झगड़े जगु मुइआ ।। (पृ. ७९०)

हउमै माइआ मोहणी दूजै लगै जाइ ।। (पृ. ८५३)

इन बिचारों से सिद्ध हुआ कि '**अहम्' ही माया का बीज तथा मूल कारण है या स्वरूप है ।** जिसमें से 'द्वैत-भाव' (दूसरा भाव) उत्पन्न हुआ है तथा इसी में सारी त्रैगुणी सृष्टि गलतान होकर सोचती है, विचार करती है तथा कर्म करते हुए परिणाम भोगती है ।

७. आध्यात्मिक माया : अहम् तथा द्वैत भाव की निवृत्ति के लिए कई प्रकार के **धर्म बनाए जाते हैं,** परन्तु **जीव धर्मों पर भी अहम् अथवा 'द्वैत भाव' का रंग चढ़ा देते हैं ।** ऐसे अहम्-ग्रस्त धर्म के आधीन हम अनेक प्रकार **के कर्म-कांड तथा दर्शनिकता** में फंसे रहते हैं ।

हउ विचि सचिआरु कूड़िआरु ।।
हउ विचि पाप पुंन वीचारु (पृ. ४६६)

दूसरे शब्दों में हमारे धार्मिक क्रिया-कर्म, कर्म-कांड, पाठ-पूजा, धार्मिक ज्ञान-ध्यान की तह में **मूल कारण 'अहम्' ही है ।**

करम कांड बहु करहि आचार ।।
बिन नावै ध्रिगु ध्रिगु अहंकार ।। (पृ. १६२)

पाठु पड़िओ अरु बेदु बीचारिओ निवलि भुअंगम साधे ।।
पंच जना सिउ संगु न छुटकिओ अधिक अहंबुधि बाधे ।।
पिआरे इन बिधि मिलणु न जाइ मै कीए करम अनेका ।।
हारि परिओ सुआमी कै दुआरै दीजै बुधि बिबेका ।।
मोनि भइओ करपाती रहिओ नगन फिरिओ बन माही ।।
तट तीरथ सभ धरती भ्रमिओ दुबिधा छुटकै नाही ।।
मन कामना तीरथ जाइ बसिओ सिरि करवत धराए ।।
मन की मैलु न उतरै इह बिधि जे लख जतन कराए ।।
कनिक कामिनी हैवर गैवर बहु बिधि दानु दातारा ।।
अंन बसत्र भूमि बहु अरपे नह मिलीऐ हरि दुआरा ।।
पूजा अरचा बंदन डंडउत खटु करमा रतु रहता ।।
हउ हउ करत बंधन महि परिआ नह मिलीऐ इह जुगता ।।
जोग सिधि आसण चउरासीह ए भी करि करि रहिआ ।।
बडी आरजा फिरि फिरि जनमै हरि सिउ संगु न गहिआ ।। (पृ. ६४१)

पाखंड भरम उपाव करिं थाके रिद अंतरि माया माया ।। (पृ. ११७८)

मनमुखि हुकमु न बूझे बपुड़ी नित हउमै करम कमाइ ।।
वरत नेमु सुच संजमु पूजा पाखंडि भरमु न जाइ ।।
अंतरहु कुसुधु माया मोहि बेधे
जिउ हसती छारु उडाए ।। (पृ. १४२३)

कूर क्रिआ उरझिओ सभ ही जग
श्री भगवान को भेदु न पाइओ ।। (सवये पा. १०)

उपरोक्त विचारों से सिद्ध हुआ कि शीर्षक "**मायाधारी अति अंना बोला**" में '**मायाधारी**' शब्द **अहम्ग्रस्त मन के लिए ही प्रयोग किया गया है ।**

ऐसे **अहमग्रस्त मन** के द्वारा कई प्रकार की रंग बिरंगी **'सूक्ष्म माया' में (डूब कर) खचित होकर जीवन द्वैत भाव में बिचरण करता हुआ त्रिगुणों में गलतान रहता है तथा अपने** मूल **'आत्मा'** अथवा '**परमात्मा**' को **पूर्णतया भूल कर 'अंना बोला'** (अन्धा और बहरा) **होकर कर्म करता है ।**

माया मोहि हरि चेतै नाही ।।
जमपुरि बधा दुख सहाही ।।
अंना बोला किछु नदरि न आवै ।।
मनमुख पाप पचावणिआ ।। (पृ. १११)

अंना बोला खुइ उझड़ि पाइ ।।
मनमुखु अंधा आवै जाइ ।। (पृ. ३१४)

मन, "**अन्धा**" **इसलिए है क्योंकि** यह अपने अन्दर प्रज्जवलित "**आत्मिक ज्योति**" को देख नहीं सकता ।

पंच दूत मुहहि संसारा ।।
मनमुख अंधे सुधि न सारा ।। (पृ. ११३)

मनमुख अंधे किछु न सूझै ।।
मरणु लिखाइ आए नही बूझै ।। (पृ. ११४)

अंतरि वसतु मूड़ा बाहरु भाले ।।
मनमुख अंधे फिरहि बेताले ।। (पृ. ११७)

देखै सुणे न जाणई अंधु जीउ ।। (पृ. ७६०)

अंधे एहि न आखीअनि जिन मुखि लोइण नाहि ।।
अंधे सेई नानका खसमहु घुथे जाहि ।। (पृ. ९५४)

नानक हुकमु न बुझई अंधा कहीऐ सोइ ।। (पृ. ९५४)

निकटि सुनउ अरु पेखउ नाही ।।
भरमि भरमि दुख भरीआ ।। (पृ. १२०९)

"बोला" अथवा 'सबद न सुणई'- मन को बोला (बहरा) इसलिए कहा गया है क्योंकि यह अन्तर-आत्मा में लगातार बज रही "अनहद धुन" को सुन नहीं सकता ।

'सुनना' हम **शारीरिक कानों** का कर्म ही समझते हैं परन्तु गुरबाणी अनुसार **'सुनना' सुरती को "नौ गोलकों" अर्थात इन्द्रियों से ऊपर उठा कर अनुभव द्वारा सम्भव हो सकता है ।**

अन्तर-आत्मा में इस **इलाही धुन** को सुनने के लिए "अनुभव", साध संगत में सिमरन द्वारा ही खुल सकता है ।

नऊ दरवाजे दसवै मुकता अनहद सबदु वजावणिआ ।। (पृ. ११०)

मूंदि लीए दरवाजे ।।
बाजीअले अनहद बाजे ।। (पृ. ६५६)

इस लेख की मुख्य पंकित "**मायाधारी अति अंना बोला**' में मायाधारी शब्द बहुत **महत्त्वपूर्ण तथा गूढ़ भेद वाला है।** साधारणत: लोग '**माया**' को केवल **धन या सम्पत्ति ही समझते हैं** । इनके विचार अनुसार '**मायाधारी' केवल 'धनियों' को ही कहा जाता है** । इसलिए जब **'मायाधारी अति अंना बोला' की यह पंक्ति** सुनते या पढ़ते हैं तो हमें यह विश्वास होता है कि यह पंक्ति **हम पर तो लागू नहीं होती क्योंकि हम तो 'धनी' नहीं हैं** । यह तो केवल **धनी व्यक्तियों के लिए ही** उच्चारित की गई होगी । हमारा ऐसा विचार या विश्वास हमारी **मानसिक अज्ञानता का सूचक है** । विश्वास के कारण हम गुरबाणी की इन पंक्तियों का **गलत अर्थ** निकालते हैं तथा अपने आप से **धोखा करते हैं ।**

यदि केवल **धनियों** को ही **मायाधारी** कहा गया होता तो वह "अति अंना बोला" नहीं हो सकते क्योंकि वह बड़े सियाने और चतुर होते हैं जिसके आधार पर वह माया अर्जित करते हैं तथा 'धनी' बनते हैं ।

लाहा माया कारने दह दिसि ढूढ़न जाइ ।। (पृ. २६९)

माया कारणि करै उपाऊ (पृ. ११५१)

भूपति राजे रंग राइ संचहि बिखु माइआ ।।
करि करि हेतु वधाइदे परदरबु चुराइआ ।। (पृ. १२४५)

माया कारनि श्रम अति करै ।।
सो माया लै गाढै धरै ।।
अति संचे समझै नही मूड़
धनू धरती तनु होए गइओ धूड़ि ।। (पृ. १२५२)

जिस प्रकार '**प्रकाश की अनुपस्थिती' ही 'अंधकार है**-उसी प्रकार **ईश्वर** की '**उपस्थिति' को भूलने** से ही '**माया' का अंधकार प्रकट होता है ।**

जा तिसु भाणा ता जंमिआ परवारि भला भाइआ ।।
लिव छुड़की लगी त्रिसना माया अमरु वरताइआ ।। (पृ. ९२१)

इसका तात्पर्य है कि जीव के जन्म लेते ही **'माया का भूत'** उसे आ चिपकता है ।

दूसरे शब्दों में **ईश्वर के अस्तित्व को भूलने से ही 'अहम्' की उत्पत्ति होती है तथा जीव मैं-मेरी के द्वैत भाव में विचरण करता है ।**

या जुग महि एकहि कउ आइआ ।।
जनमत मोहिओ मोहनी माया ।। (पृ. २५१)

मात गरभ दुख सागरो पिआरे तह अपणा नामु जपाइआ ।।
बाहरि काढि बिखु पसरीआ पिआरे
माया मोहु बधाइआ ।। (पृ. ६४०)

माया नामु गरभ जोनि का जिह तजि दरसनु पावउ ।। (पृ. ६९३)

कहि कबीर जिसु उदरु तिसु माया ।। (पृ. ११६०)

गुरबाणी में **माया का स्वरूप इस प्रकार दर्शाया गया है -**

बाबा माया रचना धोहु ।।
अंधे नामु विसारिआ ना तिसु एह न ओहु ।। (पृ. १५)

माया मोहि विसारिआ जगत पिता प्रतिपालि ।। (पृ. ३०)

जिनी रामो राम नामु विसारिआ से मनमुख मूड़ अभागी राम ।।
तिन अंतरे मोहु विआपै खिनु खिनु माया लागी राम ।।
माया मलु लागी मूड़ भए अभागी
जिन रामनामु नह भाया ।। (पृ. ४४३)

राम नामु का सिमरनु छोडिआ माया हाथि बिकाना ।। (पृ. ६८४)

इन माया जगदीस गुसाई तुम्हरे चरन बिसारे ।। (पृ. ८५७)

एह माया जितु हरि विसरै मोहु उपजै
भाउ दूजा लाइआ ।। (पृ. ९२१)

प्रत्येक जीव जब जन्म लेता है तभी उसे माया का '**भ्रम**' चिपक जाता है तथा जीव उस भ्रममयी जाल में जीवनभर फंसा रहता है और पलच पलच कर मर जाता है ।

माया होइ नागनी जगति रही लपटाइ ।।
इस की सेवा जो करे तिस ही कउ फिरि खाइ ।। (पृ. ५१०)

हउमै ममता मोहणी मनमुखा नो गई खाइ ।।
जो मोहि दूजै चितु लाइदे तिना विआपि रही लपटाइ ।। (पृ. ५१३)

माया मोहि हरि सिउ चितु न लागै ।।
दूजै भाए घणा दुखु आगै ।।
मनमुख भरमि भुले भेखधारी अंतकालि पछुताता हे ।। (पृ. १०५२)

त्रिबिधि माया रही बिआपि ।।
जो लपटानो तिसु दूख संताप ।। (पृ. ११४५)

बिनु करमा सभ भरमि भुलाई ।।
माया मोहि बहुत दुखु पाई ।।
मनमुख अंधे ठउर न पाई ।।
बिसटा का कीड़ा बिसटा माहि समाई ।। (पृ. ११७५)

एह त्रिगुण माया जिनि जगतु भुलाया ।।
जनम मरण का सहसा ।। (पृ. १२५७)

माया पटल पटल है भारी
घरु घूमनि घेरि घुलावैगो ।। (पृ. १३०८)

दूसरे शब्दों में हमारा–

शरीर
मन
चित
बुद्धि
सोच – विचार
चाव
दुख
सुख
खुशी
गमी
चतुराई
ज्ञान ध्यान
फिलासफी
काम
क्रोध
लोभ
मोह
प्रेम
गिले-शिकवे
ईर्ष्या द्वेष
वैर विरोध
ख्याल
निश्चय
श्रद्धा भावना
कर्म-धर्म
जप-तप
दान-पुण्य
जनम मरण
स्वर्ग-नरक

आदि प्रत्येक ख्याल अथवा भावना में 'अहम्ग्रस्त माया' अनेक प्रकार की रंग बिरंगी झांकियां प्रस्तुत करती है ।

बहु रंग माया बहुत बिधि पेखी ।। (पृ. १७९)

माया बिआपत बहु परकारी ।। (पृ. १८२)

मोहनी महा बचित्रि चंचलि अनिक भाव दिखावए ।। (पृ. ८४७)

बहु बिधि माया मोह हिरानो ।। (पृ. १२६९)

माया ममता है बहु रंगी ।। (पृ. १३४२)

इस 'अहम्ग्रस्त माया' का अहसास (consciousness**)** कई जन्मों से हमारे **अपने अभ्यास द्वारा हमारे अन्त-करण में धस, बस, रस कर दृढ़ हो चुका है तथा हमारे जीवन का अभिन्न अंग बन चुका है या दूसरे शब्दों में 'माया' ही हमारा 'जीवन रूप' बन चुकी है ।**

यह **जीवन रूप मायिकी रंगत** हमारे जीवन के प्रत्येक पक्ष में अनजाने ही **अवश्य प्रकट होती रहती है** तथा अनेक **रंग-बिरंगी झलकें दिखाती है ।**

उदाहरणस्वरूप-

मेरा शरीर
मेरा परिवार
मेरी सम्पत्ति
मेरी चतुराई
मेरी कामना

आदि के द्वारा हमारे विचारों, बातचीत, क्रियाओं, भावनाओं में **'मैं' अथवा 'मेरी' का अहसास हमारे मन के ताने-बाने में ओत-प्रोत एवं परिपूर्ण है तथा 'अवश्य' ही (अपने आप) प्रकट होता रहता है ।** इस **मैं-मेरी की भावना के बिना** हमारे जीवन की कोई बात पूरी ही नहीं होती ।

पुत्र कलत्रु उरझिओ जानि मेरी ।। (पृ. १७९)

मेरी मेरी करि करि डूबे खपि खपि मुए गवारा ।। (पृ. ३८०)

माया मोहु अंधु अंधारा ।।
हउमै मेरा पसरिआ पासारा ।।
अनदिनु जलत रहै दिनु राती
गुर बिनु सांति न होई हे ।। (पृ. १०४५)

माया मोहु दुखु सागरु है बिखु दुतरु तरिआ न जाइ ।।
मेरा मेरा करदे पचि मुए हउमै करत बिहाए ।। (पृ. १४१६)

यह सारा संसार ही **अहम् के भ्रम भुलाव में से उत्पन्न हुआ है तथा इस झूठे "भ्रम भुलाव" की 'माया' में लथ-पथ हो कर पलच-पलच कर खव्वार हो रहा है ।**

अंतरि अलखु न जाई लखिआ विचि पड़दा हउमै पाई ।।
माया मोहि सभो जगु सोया
इहु भरमु कहहु किउ जाई ।। (पृ. २०५)

दूसरे शब्दों में सारा संसार "भ्रममयी माया" का ही -

प्रतिबिम्ब
प्रकटाव
प्रवृत्ति
व्यवहार
बोल बाला
विस्तार
फैलाव

वड खेल तमाशा (विराट नाटक) है

जिस प्रकार **प्रकाश की अनुपस्थिती को ही 'अंधकार'** कहा जाता है । प्रकाश के प्रकट होते ही **'अंधकार' स्वयं ही अलोप हो जाता है** उसी प्रकार **ईश्वर के 'नाम' के आत्मिक प्रकाश की अनुपस्थिति** अथवा **उसकी 'भूल' को ही 'माया' कहा जाता है ।**

हरि साजनु पुरखु विसारि कै लगी माया धोहु ।। (पृ. १३३)

हउमै नावै नालि विरोधु है
दुइ न वसहि इक ठाइ ।। (पृ. ५६०)

नामु विसारि मनि तनि दुख पाया ।।
माया मोहु सभु रोगु कमाया ।। (पृ. १०६४)

निरभउ नामु विसारिआ नालि माया रचा ।। (पृ. १०९९)

जऊ लउ रिदै नही परगासा तउ लउ अंध अंधारा ।। (पृ. १२०५)

जिनी नामु विसारिआ कूड़ै लालचि लगि ।।
धंधा माया मोहणी अंतरि तिसना अगि ।। (पृ. १४१३)

इस 'मायिकी अज्ञानता' के भ्रम में **जीव को अपने मूल "ज्योति स्वरूप" आस्तित्व का ज्ञान नहीं होता**-जिस कारण वह **अपनी 'आत्मिक विरासत' से "अति अनां बोला"** अर्थात **अनभिज्ञ** रहता है । इस प्रकार **अकालपुरुष के अस्तित्व को 'भूल' कर झूठी माया के अंधकार** में अमीर, गरीब, चतुर, ज्ञानी, दार्शनिक, भद्र पुरुष आदि जीवन भी शारीरिक रूप में

"अन्धे-बहरे" व्यक्तियों की भांति **पलच-पलच कर कर्म करते तथा दुखी होते रहते हैं ।**

माया मोहि इहु जगु सुता ।।
नामु विसारि अंत विगुता ।। (पृ. ११२)

माया मोहु जगतु सबाया ।।
त्रैगुण दीसहि मोहे माया ।। ....
देवी देवा मूलु है माया ।।
सिंम्रित सासत जिनि उपाया ।।
कामु क्रोधु पसरिआ संसारे ।।
आइ जाइ दुखु पावणीआ ।। (पृ. १२९)

अंतरि अलखु न जाई लखिआ विचि पड़दा हउमै पाई ।। (पृ. २०५)

माया मोहि सभो जगु सोया
इहु भरमु कहहु किउ जाई ।। (पृ. २०५)

यह सारा 'खेल' त्रिगुणों से ऊपर **चौथे पद का अनुभवी खेल है** जिसे हमारी अल्प बुद्धि की चतुराईयां, युक्तियां, योजनाएँ, ज्ञान, दार्शनिकता न तो **समझ सकती है न ही** अनुभव **कर सकती है ।**

इसलिए **सभी 'मायाधारी' अथवा माया की अज्ञानता में फंसे हुए जीव**

> **आत्मिक मंडल की अनहद धुन से "बोले" (बहरे) तथा इलाही मंडल के आश्चर्यजनक चमत्कार देखने से "अंने" (अंधे) हैं ।**

माया मोहि हरि चेतै नाही ।।
जमपुरि बधा दुख सहाही ।।
अंना बोला किछु नदरि न आवै
मनमुख पापि पचावणिआ ।। (पृ. १११)

सबदु न जाणहि से अंने बोले से कित आए संसारा ।।
हरि रसु न पाया बिरथा जनमु गवाया जंमहि वारो वारा ।।
बिसटा के कीड़े बिसटा माहि समाणे
मनमुख मुगध गुबारा ।। (पृ. ६०१)

पेखत चाखत कहीअत अंधा सुनीअत सुनीऐ नाही ।।
निकटि वसतु कउ जाणै दूरे पापी पाप कमाही ।। (पृ. ७४१)

सिम्रित सासत अंतु न जाणै
मूरखु अंधा ततु न पछाणै ।। (पृ. १०६१)

अगिआनी अंधै दूजै लागे ।।
बिनु पाणी डुबि मूए अभागे ।। (पृ. १०६३)

"**बहु रोल घचोला**" की पंक्ति से और भी स्पष्ट होता है कि गुरबाणी **में कितनी सख्ती से ताड़ना की गई है ।**

जब हमारी बिरती **इलाही 'एक' में टिकी हो अर्थात ईश्वर से जुड़ी हो तो "शबद-सुरति-समाध"** में हमारी आत्मा किसी **इलाही रंग-रस-चाव तथा प्रेम स्वैपना में अलमस्त मतवारी, भाव विभोर हो रही होती है ।**

एकसु चरणी जे चितु लावहि लबि लोभि की धावसिता ।। (पृ. १५६)

सुंन समाधि अनहत तह नाद ।।
कहनु न जाई अचरज बिसमाद ।। (पृ. २९३)

एको चेतै मनूआ ना डोलै धावतु वरजि रहावै ।।
सहजे माता सदा रंगि राता साचे के गुण गावै ।। (पृ. ६३४)

विसम भई पेखि बिसमादी पूरि रहे किरपावत ।।
पीओ अम्रित नामु अमोलक
जिउ चाखि गूंगा मुसकावत ।। (पृ. १२०५)

एक सबदि राचै सचि समाइ ।। (पृ. १२७५)

इसके 'विपरीत' जब हमारे अहम्ग्रस्त मन पर अनेक प्रकार की **मायिकी परत चढ़ी हो तो यह मन आत्मिक ज्योति स्वरूप 'प्रकाश' से वंचित होकर 'माया' के अंधकार में विचरण करता है । आत्मिक 'अनुभवी ज्ञान' से 'अना-बोला' (अंधा-बहरा) होकर यह माया के अंधकार में अहम् के आधार पर ही सोचता, कर्म करता तथा "झूठे धंधे मोह" में पलच-पलच कर दुख कलेश भोगता है तथा जन्म-मरण के अटूट चक्र में फंसा रहता है ।**

त्रै गुण बिखिआ अंधु है माया मोह गुबार ।।
लोभी अन कउ सेवदे पड़ि वेदा करै पुकार ।।
बिखिआ अंदरि पचि मुए ना उरवारु न पारु ।। (पृ. ३०)

माया मोहु गुबारु है तिस दा न दिसै उरवारु न पारु
मनमुख अगिआनी महा दुख पायदे
डूबे हरिनामु विसारि ।। (पृ. ८९)

माया माया के जो अधिकाई विचि माया पचै पचीजै ॥
अगिआनु अंधेरु महा पंथु बिखड़ा
अहंकारि भारि लदि लीजे ॥ (पृ. १३२६)

यदि गौर से विचार करें तो पता चलेगा कि हमारा **'मन' पारे की भांति एक क्षण भी टिक नहीं सकता । हर क्षण** यह मायिकी **'द्वैत भाव'** के असर के आधीन-लोभ, मोह, काम, क्रोध आदि की **वासनाओं द्वारा प्रेरित होकर फिकर, चिंता, ईर्ष्या, द्वेष में गलतान रहता है तथा कर्म करता है ।** जब काम-काज से फुर्सत पा कर सोता है तो **नींद में भी उसे स्वप्न चैन नहीं लेने देते क्योंकि** इसमें पांचों द्वारा रचित **अनेक प्रकार की वासनाओं की हलचल 'भडथू' या कोलाहल मचा रहता है ।**

माया विचि सहजु न ऊपजै माया दूजै भाइ ॥ (पृ. ६८)

अहिनिसि मगनु रहै माया मै॥
कहु कैसे गुन गावै ॥ (पृ. २१९)

कबहू जीअड़ा ऊभि चड़तु है कबहु जाइ पइआले ॥
लोभी जीअड़ा थिरु न रहतु है चारे कुंडा भाले ॥ (पृ. ८७६)

दिसंतर भवै अंतरु नही भाले ॥
माया मोहि वधा जमकाले ॥ (पृ. १०६०)

माया मोहु बहुत चितवदे बहुत आसा लोभु विकार ॥
मनमुखि असथिरु न थीऐ
मरि बिनसि जाइ खिन बार ॥ (पृ. १४१७)

इस **'शोर-गुल' के कारण** हमारा मन अन्तरमुखी दिव्य दृष्टि द्वारा आत्मिक ज्योति के **'दर्शन' नहीं कर सकता तथा 'अनहद तत् शबद' की 'धुन' सुनने में असमर्थ रहता है ।** इस प्रकार विरासत में प्राप्त आत्मिक शान्ति, रंग रस, चाव, प्रेम स्वैपना से वंचित रहता है । दुख की बात है कि हम गुरबाणी के तीक्ष्ण, ताड़नामयी उपदेश **पढ़, सुन, गा कर भी 'माया' के रंग में गलतान हो कर अज्ञानता में फंसे हुए हैं तथा गुरमति से अनजान, बेपरवाह तथा ढीठ हो कर अपना अमूल्य जन्म माया के झूठे चमत्कारों में व्यर्थ गवा रहे हैं ।**

माया मोहु मेरै प्रभि कीना आपे भरमि भुलाए ॥
मनमुखि करम करहि नही बूझहि बिरथा जमनु गवाए (पृ. ६७)

मायाधारी जीवों के विचार, आवश्यकताएं, इच्छाएं, निश्चय **भिन्न भिन्न होने के कारण उनमें आपस में गिले-शिकवे, ईर्ष्या-द्वेष, वैर-विरोध आदि की भावनाएं होनी अनिवार्य हैं ।**

जिस कारण उनके मन में **खींचतान, शोर-गुल** अथवा **द्वैत-भाव की हलचल मची रहती है । ऐसे मायिकी मन के शोर-गुल में अथवा विचारों की हलचल में न तो शब्द की 'धुन' सुनी जा सकती है तथा न ही अन्तर आत्मा में इलाही ज्योति के दर्शन हो सकते हैं ।**

तभी गुरबाणी हमें यह **उपदेश** देती है-

कहु नानक जिनि धूरि संत पाई ।।
ता कै निकटि न आवै माई ।। (पृ. १८२)

थिरु घरि बैसहु हरि जन पिआरे ।।
सतिगुरि तुमरे काज सवारे ।। (पृ. २०१)

जा कउ रे किरपा करै जीवत सोई मरै ।।
साध संगि माया तरै ।। (पृ. २१३)

नानक माया का दुखु तदे चूकै
जा गुरसबदी चितु लाए ।। (पृ. २४६)

करि किरपा सतसंगि मिलाए ।।
नानक ता कै निकटि न माए ।। (पृ. २५१)

धधा धावत तउ मिटै संत संगि होइ बासु ।। (पृ. २५७)

सेखा चउचकिआ चउवाइआ एहु मनु इकत घरि आणि ।।
एहड़ तेहड़ छडि तू गुर का सबदु पछाणु (पृ. ६४६)

माया मोह भरमु भउ काटै संत सरणि जो आवै ।। (पृ. ७४८)

बिसराम पाए मिलि साध संगि
ताते बहुड़ि न धाउ ।। (पृ. ८१८)

ओट गही जगत पित सरणाइआ ।।
भै भइआनक जमदूत दुतर है माया ।।
होहु क्रिपाल इछा करि राखहु
साध संतन कै संगि संगा ।। (पृ. १०८३)

करि किरपा मेलहु संत संगति
तूटि गई माया जमजाली ।। (पृ. ११३४)